घर से विद्यालय तक
सृजन के आनंद में बाधक माता-पिता तथा शिक्षक की अपने उत्तरदायित्व और अपराध-बोध से अनभिज्ञता

प्रभात कुमार*
आशीष श्रीवास्तव**

खुद की ओर मुड़कर देखने की आवश्यकता को रेखांकित करता यह आलेख माता-पिता और गुरु को विशेष रूप से संदर्भित है। बच्चों के विचारों तथा कार्यों के मूल्यांकन तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के संदर्भ में रूपांतरण में संलग्न माता-पिता और शिक्षक का मन खुद के विचारों के पुनर्मूल्यांकन की ज़रूरत नहीं समझता। इसी ज़रूरत पर यह आलेख प्रकाश डालता है। यह आलेख इस बात की जाँच-पड़ताल करता है कि माता-पिता कैसे अपनी गलतियों से अनभिज्ञ रहते हैं और कैसे जाने-अनजाने अपने बच्चों के पूर्ण विकास में अवरोध पैदा करते हैं। बच्चे के जन्म को माता-पिता के द्वारा पूरी मानवता के संदर्भ में देखने की ज़रूरत है न कि सिर्फ़ स्वयं को सुरक्षित करने तथा अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति के संदर्भ में। जिद्दु कृष्णमूर्ति के विचारों के आलोक में यह आलेख इस बात को समझने में सहायता करता है कि कैसे माता-पिता तथा शिक्षक की संस्कारबद्धता उन्हें यथार्थ से दूर रखती है। बच्चों की परवरिश करने में माता-पिता तथा शिक्षण कार्य से जुड़े शिक्षक कैसे बच्चों का अहित करते हैं – इन बातों को सामान्य जन तक पहुँचाने वाली विभिन्न भारतीय फ़िल्मों के योगदान पर भी यह आलेख चर्चा करता है। खुद की विचार-व्यवस्था को शांतचित्त अवलोकन द्वारा देखने को प्रेरित करता यह आलेख माता-पिता और शिक्षक, दोनों को सूक्ष्म स्तर पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से की गई अपनी गलतियों को समझने का अवसर भी प्रदान करता है।

* *शोध छात्र,* शिक्षा विभाग, विश्व भारती, शांतिनिकेतन बोलपुर, पश्चिम बंगाल 731235
** *उप-प्राचार्य,* शिक्षा विभाग, विश्व भारती, शांतिनिकेतन बोलपुर, पश्चिम बंगाल 731235

परिचय

Your children are not your children.
They are the sons and daughters of
Life's longing for itself.
They come through you but not from you,
And though they are with you yet they
belong not to you.
You may give them your love but not
your thoughts,
For they have their own thoughts...[1]

– Kahlil Gibran

माता-पिता तथा शिक्षक के दृष्टिकोण या उनके द्वारा व्यक्त विचारों को भारतीय जनमानस में पूर्णतः आत्मसात् कर लेने की परंपरा रही है। सदियों से चली आ रही माता-पिता तथा शिक्षक की बातों को मूक-बधिर स्वरूप होकर मान लेने वाली बात इतनी रूढ़ हो चुकी है कि माता-पिता तथा शिक्षक को खुद के द्वारा किए जा रहे अक्षम्य अपराधों का भान ही नहीं होता। विजय को उद्धत माता-पिता और शिक्षक का मन कैसे आतंक के राज को कायम करते हुए बच्चों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है, यह उनका मूढ़ मन कभी जान नहीं पाता। घर और विद्यालय, दो ऐसी जगह हैं, जहाँ बच्चे के जीवन के सक्रिय समय का लगभग आधा-आधा भाग व्यतीत होता है और अगर जाने-अनजाने इन दोनों जगहों पर माता-पिता तथा शिक्षक की सत्ता कायम हो तो फिर बच्चा भी सिर्फ़ अपने माता-पिता तथा शिक्षक का प्रतिरूप ही होगा। कई दशक पहले खलील जिब्रान द्वारा लिखी गई ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ माता-पिता तथा शिक्षक की चरम अज्ञानता को दर्शाती हैं जो खुद को बच्चों से संबंधित सभी निर्णयों को लेने के लिए आधिकारिक तौर पर सही मानते हैं। अधिकांश माता-पिता बच्चे के प्रादुर्भाव को सिर्फ़ अपनी कृति मान लेने की गलती करते हैं, जबकि उस बच्चे के आगमन में वे सिर्फ़ एक माध्यम भर होते हैं। बच्चे के आगमन के पीछे के विज्ञान का फ़लक इतना विस्तृत होता है कि उसे माता-पिता का संकीर्ण मन कभी समझ ही नहीं पाता है। प्रकृति की निधि को अपना मान लेना और फिर उसके आगमन के पीछे छिपे उद्देश्यों को सीमित करते हुए अपने स्वार्थ की पूर्ति वाले उद्देश्यों में परिवर्तित कर देने का कार्य माता-पिता और शिक्षक द्वारा होता है। एक बच्चे के स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए आवश्यक प्रेम और सहानुभूति जैसे तत्वों को उपलब्ध कराने के स्थान पर स्वयं के विचारों तथा आकांक्षाओं वाले मन को थोपने की कोशिश की जाती है। हिन्दुस्तानी विद्यालयों में शिक्षकों का बच्चों के प्रति गैर-ज़िम्मेदाराना रवैया देखकर ही टैगोर ने उन्हें 'नादिरशाह' जैसे शब्दों से नवाज़ा था।[2] इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी बिना किसी रूपांतरण के एक ही विचार वाले मूढ़ मन की प्रतिकृति बनती रहती है और औसत का साम्राज्य कायम रहता है। जिद्दु कृष्णमूर्ति कहते हैं कि जीवन में समय की विलक्षण भूमिका है। जो वर्तमान है वही भविष्य है।[3] माता-पिता का निष्क्रिय मन बच्चों के वर्तमान के बारे में चिंतन कम, भविष्य की चिंता अधिक करता है। यह भविष्य की चिंता वस्तुतः माता-पिता अपने अतीत से उपजी निराशा से निकलने, अपनी दमित इच्छा-आकांक्षा को पूरा करने और खुद को सुरक्षित

Chapter 1.indd 6 8/8/2017 3:35:27 PM

करने हेतु करते हैं। बच्चे का वर्तमान माता-पिता और शिक्षक का अतीत बन कर रह जाता है और फिर बच्चे का भविष्य तो वही होना है जो उसका वर्तमान है। इस प्रकार एक विचार, सोचने का तरीका, प्रेक्षण विधि—सभी की पुनरावृत्ति पीढ़ी-दर-पीढ़ी बिना परिवर्तन के, ज्ञात-अज्ञात स्रोतों द्वारा, हस्तांतरित होता रहता है और इसके फलस्वरूप प्रत्येक पीढ़ी एक गतिहीन मानसिक अवस्था की अभ्यस्त हो जाती है। घर और विद्यालय के वातावरण में रचे-बसे सीमित विचारों के दायरे में, जो पूर्व से चले आ रहे गतिहीन मानसिक अवस्था की उत्पत्ति है और माता-पिता या शिक्षक ही उसके वाहक हैं, नयी पीढ़ी की ज्ञानेन्द्रिय क्षमता का क्षय उनके आगमन से ही प्रारंभ हो जाता है। माता-पिता या शिक्षक की संस्कारबद्धता जो उन्हें किसी भी प्रकार से यह देखने में मदद नहीं करती कि उनके विचार तो सीमित हैं ही तथा जिस अनुभव के आधार पर वे विचार उत्पन्न हुए हैं, वे भी सीमित हैं। जब यह सीमित विचारों वाला मन नए, ताज़े और असीम संभावनाओं वाले मन से मिलता है, तो दोनों एक-दूसरे को समझ नहीं पाते। समझना हो भी नहीं सकता। रसायन विज्ञान के नियमानुसार तो *like dissolves like* होता है। फिर सीमित और असीम का मेल हो तो कैसे! यद्यपि समझना तो दोनों तरफ़ से होता है, परंतु प्रारंभ के कुछ सालों तक तो मुख्य ज़िम्मेवारी माता-पिता और गुरु की ही होती है। इस समझ के अभाव में कितना कुछ अज्ञात रह जाता है, कितना कुछ खो जाता है, परंतु हमारे माता-पिता और शिक्षक को अपने द्वारा की गई गलतियों का ज्ञान कभी हो ही नहीं पाता।

प्रासंगिकता

मानव तकनीकी विकास के अनगिनत चरणों से होता हुआ आज एक ऐसी स्थिति में आ पहुँचा है जहाँ से कोई भी चीज़ असंभव प्रतीत नहीं होती है, परंतु सवाल यह है कि इस तकनीकी विकास के ऊँचे मानदंडो का अनुसरण करने वाले मन का भी विकास हो रहा है या नहीं? हज़ारों खयाल को रंगों में बुनने वाले ईशान अवस्थी के पिता को उसकी सृजनात्मकता का कोई फ़ायदा नज़र नहीं आता। बच्चों को लाइफ़ के रेस के लिए तैयार करने वाले शिक्षक के पास ज़रा ठहर कर ईशान नंद किशोर अवस्थी जैसे बच्चे को देखने-समझने की फ़ुर्सत और योग्यता कहाँ है।[4] माता-पिता या फिर गुरु जो खुद भी अनुकरण में शामिल रहे हैं, जिन्होंने अब तक खुद की ज़िंदगी भी किसी आदर्श व्यक्ति, किसी धर्म, किसी धर्मग्रंथ में लिखी बातों के अनुकरण द्वारा ही व्यतीत की है, दूसरे के द्वारा तय सफ़लता के पैमानों, जीवन दृष्टि और मूल्यों को मानते रहे हैं अर्थात् दूसरे के पास जो है, उसको एक तयशुदा पथ पर चलते हुए प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध हैं— वे अपने बच्चों, छात्रों से भी अनुकरण के अभ्यस्त हो जाने की उम्मीद रखते हैं। यह अनुकरण ही अनुशासन कहलाता है।[5] यह अनुशासन जो प्रतिबद्धता के फलस्वरूप आता है, हमारी खोज की स्वतंत्रता को समाप्त कर देता है और स्वतंत्रता के अभाव में एक बच्चा अपनी अन्वेषण क्षमता तथा रचनात्मकता को धीरे-धीरे खोकर उस भीड़ का हिस्सा हो जाता है, जिसका हिस्सा उसके माता-पिता और शिक्षक रहे हैं। इस प्रकार माता-पिता या शिक्षक

Chapter 1.indd 7 8/8/2017 3:35:27 PM

कुछ नए के आगाज़, जो जीवन को जीने के लिए अधिक ज़रूरी है, की सभी संभावनाओं पर विराम लगा देते हैं। अतः यह विषय इस संदर्भ में प्रासंगिक है कि माता-पिता या गुरु को भी अपनी जीवन-दृष्टि का आत्मावलोकन द्वारा निरीक्षण करना चाहिए। इस निरीक्षण के फलस्वरूप ही माता-पिता या शिक्षक के अंदर से खुद को आधिकारिक रूप से सही मानने वाली प्रवृति को निकाला जा सकता है। यह निरीक्षण ही अपने बच्चे और छात्र को औसतपन से बचा पाएगा। माता-पिता तथा शिक्षक के अत्यधिक दबाव के कारण बच्चों में बढ़ रही आत्महत्या की प्रवृति इस विषय को प्रासंगिक बनाती है, ताकि हम सृजनशील बच्चों के उस समूह को बचा पाएँ, जिसे हम खो रहे हैं और जिनकी ज़रूरत हमारे समाज को है।

उद्देश्य

यह आलेख मूल रूप से इस बात की तहकीकात करता है कि किस प्रकार जाने-अनजाने, माता-पिता या गुरु बच्चों में निहित अपार सृजनात्मकता को देख नहीं पाते; किस प्रकार उनकी संस्कारबद्धता बच्चे द्वारा समग्र संभावनाओं के संदर्भ में सोचने की क्षमता को एक रेखीय सोच में परिवर्तित कर देती है; कैसे एक बच्चा, जो संपूर्ण जीव-जगत के प्रति उत्तरदायी है, को थोड़ा या सिर्फ़ अपने प्रति उत्तरदायी होना सिखा देती है, कैसे माता-पिता की परवरिश माता-पिता या गुरु के रूढ़िवादी सोच के तरीके को बच्चे में डालने में सफ़ल हो जाती है और कैसे माता-पिता या शिक्षक को इन सारी बातों का आभास नहीं होता या फिर किसी क्षण में आभास तो होता है, परंतु उनकी जड़ मानसिकता उन्हें बदलने नहीं देती। जड़ मानसिकता वाले मन का जाग्रत मन में परिवर्तन भी इस आलेख के मूल उद्देश्य में अंतर्निहित है।

विश्लेषण

एक बच्चे के संपूर्ण जीवनकाल में हज़ारों लोग उसके संपर्क में आते हैं और अलग-अलग तरह के संबंध बनते हैं, परंतु माता-पिता और शिक्षक से बने संबंध अपनी खास अहमियत रखते हैं। संबंध दो व्यक्तिओं के बीच पारस्परिकता का बोध है। संबंध का अर्थ है भयमुक्त सहसंवाद, एक-दूसरे के साथ सहभागिता और आपस में सीधे संवाद स्थापित करने की स्वतंत्रता।[6] लेकिन ऐसा नहीं होता। प्रत्येक संबंध परस्पर संतुष्टि अर्थात् एक-दूसरे के काम आने के संदर्भ में ही विकसित होता है और अगर यह संतुष्टि हमें किसी संबंध में नहीं मिलती, तब हम रिश्ता बदल लेते हैं। अब यहाँ पर माता-पिता का बच्चे के साथ जो रिश्ता है वह किसी भी दूसरे रिश्ते से थोड़ा अलग है। अन्य किसी रिश्ते में दो व्यक्ति आपसी सहमति, जो एक-दूसरे की परस्पर संतुष्टि के संदर्भ में ही होता है, से एक-दूसरे से जुड़ते हैं। अब माता-पिता और बच्चे के बीच बने रिश्ते में बच्चों का आगमन एक तरफ़ा लिए गए निर्णय का परिणाम होता है। अधिकांश बार तो माता-पिता को यह पता ही नहीं होता कि वे बच्चा क्यों लाना चाहते हैं। कृष्णमूर्ति माता-पिता से पूछते हुए कुछ कहते हैं— "Do parents ever ask themselves why they have children? Do they have children to perpetuate their name, to carry on their own property?

Do they want children merely for the sake of their own delight, to satisfy their own emotional needs. If so, then the children become a mere projection of the desires and fears of their parents." बच्चे के आगमन से लेकर किशोरावस्था तक कोई भी निर्णय आधिकारिक रूप से खुद को सही मानते हुए सिर्फ़ माता-पिता द्वारा ही लिया जाता है। गौर करने लायक बात यह है कि इस रिश्ते में परस्पर संतुष्टि की जगह एक तरफ़ा संतुष्टि की बात होती है। इन सभी संबंधों में प्रेम अनुपस्थित होता है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि, "Contrary to what is generally believed, most parents do not love their children, though they talk of loving them…''[7] माता-पिता की अपनी दौड़ है, अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं, अपनी सुरक्षा एवं सुख-चैन का भाव है। इन सब भाव के अंतर्गत ही माता-पिता बच्चे की परवरिश शुरू करते हैं। आश्चर्यजनक तरीके से इन सब अवस्थाओं को वे कब अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा बना लेते हैं, कब विभिन्न तरह के भावों मे रहते हुए खुद को तथा दूसरे को गलत तरह से प्रभावित करने लगते हैं, उन्हें स्वयं पता नहीं चलता। अब पुनः माता-पिता जिस संतुष्टि (जो इच्छा के रूप में है) की तलाश में भटक रहे होते हैं, उसके दो पहलू हैं— प्रथम वह (संतुष्टि) जो स्वयं से अपेक्षित है और दूसरा वह जो बच्चे द्वारा अपेक्षित है। अब यहीं से अपेक्षा पर खरे नहीं उतर पाने वाले काल्पनिक भाव वाली अवस्था में माता-पिता खुद को ले आते हैं और इसके लिए स्वयं ही ज़िम्मेदार होते हैं। यह भाव फिर भय को उत्पन्न करता है। अब इस भय वाले भाव की तीव्रता जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक माता-पिता खुद को तथा बच्चों को अनुशासित करने का प्रयास करेंगे। भय के रहते स्वतंत्रता और सृजन की बात करना बेमानी है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि— "In order to understand relationship it is important to understand first of all 'what is', what is actually taking place in our lives, in all the different subtle forms." माता-पिता को सर्वप्रथम तो यह समझना होगा कि उनके जीवन में सूक्ष्म स्तर पर हो क्या रहा है; कैसे संस्कारबद्धता ने उन्हें संतुष्टि के संदर्भ में ही कुछ सोचने, किसी कार्य को करने, संबंध बनाने या बच्चे को पैदा करने को निर्देशित कर रखा है और कैसे प्रेम तत्व उनकी ज़िंदगी से अनुपस्थित हो चुका है। यह समझना तभी होगा, जब आत्म-विस्मृति होगी अर्थात् संस्कारबद्धता से मुक्ति। यहाँ पुनः विचार की ज़रूरत है। अब यहाँ यह समझने वाली बात है कि जिस संतुष्टि अर्थात् अपनी इच्छाओं, लालसाओं, अहम् की पूर्ति के सिलसिले में माता-पिता ने खुद को तथा अपने बच्चों को अनुशासित किया, क्या वह अनुशासन 'जो है' (what is) अर्थात् यथार्थ को समझने में माता-पिता की सहायता कर रहा है? यहाँ तीन बातें स्पष्ट करनी ज़रूरी हैं— पहला, माता-पिता को यह आभास नहीं है कि वे अपनी संतुष्टि के लिए क्रियाशील हैं; दूसरा, उन्हें लगता है कि जिस अनुशासन को उन्होंने अपने तथा बच्चों के जीवन में शामिल कर रखा है, उसके अंतर्गत वे बिलकुल सही पथ पर अग्रसर हैं और किसी प्रकार

के आत्मावलोकन की ज़रूरत नहीं है अर्थात् उन्हें यह अनुमान बिलकुल नहीं है कि अनुशासन ही उन्हें 'जो है' को समझने में मुश्किल पैदा कर रहा है और तीसरा, उन्हें यह भी आभास नहीं है कि उनके अनुशासित होने के पीछे वस्तुतः उनका डर है और डर के फलस्वरूप पैदा हुए अनुशासन को बनाए रखने के लिए उन्हें प्रयास करना पड़ रहा है। अनुशासन सहज अभिव्यक्ति नहीं है। प्रयास का अर्थ ही है कि वे (माता-पिता) सहज नहीं हैं अर्थात् स्वतंत्र नहीं हैं।

हम 'जो है' को देखने में बाधा बने अनुशासन की भूमिका को समझने का प्रयास करते हैं। अब तक यह समझ में आ चुका है कि माता-पिता खुद को अनुशासित मानते हैं। अनुशासन कैसे उनके मन को संकुचित करता है, सीमित करता है, इच्छा के माध्यम से, प्रभावों तथा इसी तरह की अन्य बातों के द्वारा कैसे वह उनके मन को किसी विशेष कर्म के लिए बाध्य करता है; एक संस्कारबद्ध मन, उसकी संस्कारबद्धता चाहे जितनी भी 'सद्‌गुणी' क्यों न हो, स्वतंत्र नहीं हो सकता और यथार्थ को नहीं समझ सकता। यथार्थ अर्थात् 'जो है' तभी अभिव्यक्त हो सकता है, जब स्वतंत्रता हो। यदि माता-पिता किसी लक्ष्य को खोज रहे हैं तो वे स्वतंत्र नहीं हैं, क्योंकि वे उस लक्ष्य से बंधे हैं। स्वतंत्रता में ही हम किसी वस्तु का अन्वेषण कर सकते हैं— किसी नवीन भावना का, किसी नवीन विचार का, किसी नवीन दृष्टि का। कोई भी अनुशासन जो बाध्यता पर आधारित है, सभी प्रकार की स्वतंत्रता का निषेध करता है। अतः अभ्यास द्वारा, आदत द्वारा, किसी अनुशासन के संवर्धन द्वारा केवल उसी को प्राप्त किया जा सकता है, जिस पर उसकी दृष्टि है। अतः वह स्वतंत्र नहीं है; वह उसका साक्षात् नहीं कर सकता जो अपरिमित है।[8] अनुशासन उन्हें एक ऐसी प्रक्रिया में शामिल कर लेता है जिसके अनुशीलन के बाद उन्हें जो चाहिए, वह मिल जाता है। इन सारी प्रक्रियाओं के प्रति माता-पिता का जागरूक होना कि कैसे उन्होंने अपनी संतुष्टि के लिए खुद के तथा अपने बच्चे के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास को रोक रखा है, ही प्रज्ञा का आरंभ है, जो स्वतंत्रता लाती है। यह प्रज्ञा ही है जो माता-पिता को अपने स्व से, जो मुख्य रूप से स्वार्थपूर्ण संतुष्टि (भले ही वह किसी प्रकार का हो) के संदर्भ में ही सोचने-विचारने को उद्वेलित करता है, मुक्त करता है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि स्व से मुक्ति तो सिर्फ़ प्रज्ञापूर्ण बोध (Intelligent understanding) द्वारा ही संभव है, न कि अनुशासन द्वारा। अनुशासन प्रज्ञा (Intelligence) को उत्पन्न नहीं कर सकती।[9]

द्वंद्व में फंसे माता-पिता मन को सूक्ष्म अवलोकन द्वारा समझ सकते हैं। सूक्ष्म अवलोकन और गहन शांति ही आंतरिक संवेदनशीलता को लाती है। यह संवेदनशीलता माता-पिता को क्षण-क्षण द्वंद्व के ढंग को समझने में मदद कर सकती है। इस प्रकार, एक माता-पिता और शिक्षक को सूक्ष्म अवलोकन और गहन शांति से उपजी संवेदनशीलता अपने स्व से अलग रहने में मदद कर सकती है। यहीं से एक बच्चे के साथ माता-पिता और शिक्षक का सह-संवाद और सीधे संवाद स्थापित हो सकता है और तभी बच्चे का नैसर्गिक तथा संपूर्ण विकास संभव है।

माता-पिता या शिक्षक कई बार गैर-इरादतन अपने बच्चों की प्रगति में स्वयं ही अवरोध स्वरूप

खड़े हो जाते हैं। शिक्षक के रूप में तो यह कई बार इरादतन भी होता है। ऐसा नहीं है कि इन सब बातों को लेकर कभी किसी ने चर्चा नहीं की। शिक्षाविदों, दार्शनिकों तथा फ़िल्मी माध्यमों द्वारा ये बातें प्रकाश में लाई जाती रही हैं। *इकबाल* फ़िल्म में अपने छात्र 'मोहित' की जगह का सौदा करने वाले गुरुजी जब मोहित से भलाई की बात करते हैं तो मोहित कहता है, 'आप से, अपने बाप से और हर उस इंसान से जिसने मेरा भला चाहा है go to hell'.[10] *तारे ज़मीं पर* एक ऐसी अतिसंवेदनशील फ़िल्म है जो प्रत्येक परिवार में माता-पिता तथा विद्यालयों में शिक्षकों की मनःस्थिति को बड़ी खूबसूरती से रेखांकित करती है। वक्त की कमी की दुहाई देता समाज और उसी समाज की एक इकाई 'ईशान अवस्थी' के माता-पिता और शिक्षक अपने ही बच्चों को समझने में नाकाम एक ऐसे भीड़तंत्र का हिस्सा बनने को तैयार हैं जो द्वंद्व में जी रहा है। होड़ में इस कदर डूबा है कि बच्चे के मन को समझ पाने की फ़ुर्सत कहाँ है? आम समाज में रह रहे उन तमाम माता-पिता की कहानी एक जैसी ही है जो खुद में उलझे हुए हैं। जिन्हें खुद ही पता नहीं कि जीवन जीते कैसे हैं। भीड़ तंत्र के द्वारा तय किए जा रहे सपनों को उड़ान देने में अपने बच्चों के नैसर्गिक उड़ान का गला घोंट कब ये माता-पिता अपने बच्चों के प्रति ही असंवेदनशील रुख अपना लेते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता है। '*थ्री इडियट्स*' एक ऐसी फ़िल्म है जिसने हमें बहुत कुछ सोचने पर मजबूर किया। इम्पीरियल कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग का प्रिंसिपल कॉलेज में आए हुए बच्चों से प्रथम दिन ही जब यह कहता है कि *'life is a race, compete or die'* तो वह विद्यालय के उस शिक्षक का ही प्रतिनिधित्व कर रहा होता है जो क्लास में बच्चों के बीच ही एक-दूसरे को धक्के मारकर आगे निकल जाने की तालीम दे रहा होता है। 'फ़रहान कुरैशी' के पिता अपने बेटे के फ़ोटोग्राफर बनने की तमन्ना को सिरे से खारिज कर देते हैं।[11] क्रिकेट के मैदान पर अपनी गेंदबाज़ी द्वारा जलवे बिखेरने वाला इकबाल[12] अपने पिता की नासमझी के कारण खेती के धंधे में लगा दिया जाता है। किसे फ़ुर्सत है ईशान अवस्थी के नोटबुक को देखने की, किसे फ़ुर्सत है ईशान अवस्थी के चित्रों से झाँकते मनोभाव को पढ़ लेने की। इस तरह हम देखते हैं कि समय-समय पर आई कई सारगर्भित फ़िल्मों ने माता-पिता और शिक्षक को अपनी सोच के तरीके पर पुनर्विचार के लिए मजबूर किया, परंतु यह हमारी और हमारे समाज की विडंबना है कि हमें अच्छी चीज़ें थोड़े समय के लिए ही प्रभावित करती हैं और हम फिर से उसी पुराने रास्ते पर चल पड़ते हैं, जिसके हम सभी अभ्यस्त हैं।

अब हम एक और महत्वपूर्ण विषय की ओर चलते हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट कहती है कि 2014 में कोटा शहर में प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी के सिलसिले में आए बच्चों में से 29 ने आत्महत्या की जो राष्ट्रीय मानक 10.6 प्रति एक लाख से बहुत ज़्यादा है।[13] मदन लाल अग्रवाल पेशे से एक मनोचिकित्सक हैं और इन आत्महत्याओं के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—''They feel guilty because their parents have spent so much money

and have high expectations. Parents often impose their own unfulfilled ambitions on their children.'' मध्यमवर्ग के परिवारों की अपेक्षाएँ इतनी बढ़ गई हैं कि उसका दबाव बच्चों को आत्महत्या के लिए मजबूर कर रहा है। माता-पिता और शिक्षक अंकों के गणित में ऐसे उलझ गए हैं कि, 'राम शंकर निकुम'[14] के शब्दों में, सभी को अपने-अपने घरों में टॉपर्स और रैंकर्स उगाने हैं, हर किसी को अव्वल नंबर चाहिए। 2015 में दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर कई विषयों में कट ऑफ़ सीधे 100 प्रतिशत रख दी गई थी। 2016 में स्नातक स्तर पर दाखिले के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय ने जो प्रथम सूची जारी की है उसके अनुसार विभिन्न महाविद्यालयों के अलग-अलग विषयों में कट ऑफ़ 99 प्रतिशत से 100 प्रतिशत के बीच है।[15] इतनी ऊँची कट ऑफ़ इस बात को बताती है कि बच्चे अच्छे अंक ला रहे हैं, परंतु इतने अधिक अंक हमारे सामने कई सवाल छोड़ जाते हैं—क्या हमारी मूल्यांकन पद्धति सही है? अगर उत्तीर्ण करने वाले बच्चों के प्रतिशत में साल-दर-साल वृद्धि हो रही है और अच्छे अंक भी बच्चों द्वारा लाए जा रहे हैं, तब फिर देश के जाने-माने शिक्षाविद् देश की गिरती शिक्षा व्यवस्था को लेकर इतने चिंतित क्यों हैं? क्या इतने ऊँचे अंक लाने वाली पीढ़ी हमारे ज्ञान समाज के निर्माण के सपने को साकार रूप दे पाएगी? या फिर ऊँचे अंकों की चाह में कुछ और ही चल रहा है? माता-पिता की महत्वाकांक्षा, शिक्षक द्वारा खुद को प्रशंसित देखने की ललक और अंकों के मूल्यांकन से जुड़ी संस्थाओं में बैठे असामाजिक तत्व इन तीनों की जुगलबंदी की भी जाँच-पड़ताल ज़रूरी है। बिहार में विगत कुछ दिनों पहले हुए इंटर टॉपर्स से जुड़ी अनियमितता इसका ताज़ा उदाहरण है।

निष्कर्ष

माता-पिता और गुरु सिर्फ़ बच्चों की भलाई के बारे में ही सोचते हैं— यह बात भारतीय जनमानस की सोच में इस तरह गहरे पैबस्त है कि इस बात पर पुनर्विचार की बात हमारी सोच का हिस्सा कभी बन ही नहीं पाती है। वर्तमान समय में घटी कई घटनाएँ हमें माता-पिता तथा गुरु द्वारा बच्चों के संदर्भ में दिखाए जा रहे भलाई वाले भाव पर विचार-विमर्श के लिए उद्वेलित करते हैं। माता-पिता और गुरु का काम बच्चों के अपने सपने को उड़ा न देने में मदद करना है, न कि खुद के सपनों को बच्चों द्वारा पूरा करने की चाहत रखना। जीवन सुंदर है और जीवन से महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं, इस बात को हम सब को समझना होगा। बच्चों के नाज़ुक कंधों पर अपनी चाहतों के वज़न डालने से हमें बचना होगा। निदा फ़ाजली कहते हैं —

बच्चों के छोटे हाथों को चाँद सितारे छूने दो,
चार किताबें पढ़ कर वो भी हम जैसे हो जायेंगे,

बच्चों को अपनी चाहतों के साथ जीने दीजिए, तभी शायद उनकी मासूमियत, उनकी संवेदनशीलता और सृजनात्मक बची रह पाएगी और तभी शायद एक सुंदर समाज की रचना हो पाएगी। थोड़ा ठहरिये! बच्चे घोड़े नहीं हैं और न ही उन्हें किसी रेस में भाग लेना है। ज़िंदगी रेस नहीं है, इसे समझने के लिए ठहरना तो होगा।

टिप्पणी

[1]http://www.katsandogz.com/onchildren.html

[2]रविंद्रनाथ ठाकुर. 2004. रविंद्रनाथ का शिक्षा दर्शन. ग्रंथशिल्पी, नयी दिल्ली. पृष्ठ 125.

[3]जे. कृष्णमूर्ति. 2001. *युद्ध और शांति*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया, वाराणसी. पृष्ठ 4.

[4]*तारे ज़मींन पर*. 2007 में प्रदर्शित एक फ़िल्म में एक बच्चे का नाम ईशान अवस्थी है.

[5]जे. कृष्णमूर्ति. 2007. *प्रथम और अंतिम मुक्ति*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया, वाराणसी. पृष्ठ 313.

[6]____. वही ____. पृष्ठ 345.

[7]जे. कृष्णमूर्ति. 1992. एजुकेशन एंड द सिग्निफ़िकेंस ऑफ़ लाइफ़. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया, चेन्नई. पृष्ठ 101.

[8]जे. कृष्णमूर्ति. 2007. *प्रथम और अंतिम मुक्ति*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया, वाराणसी. पृष्ठ 315.

[9]____. वही ____. पृष्ठ 307.

[10]*इकबाल*. 2005 में प्रदर्शित फ़िल्म में मोहित का किरदार नसीरुद्दीन शाह और गुरुजी का किरदार गिरीश कर्नाड ने निभाया था.

[11]*थ्री इडियट्स*. 2009 में प्रदर्शित फ़िल्म में फ़रहान कुरैशी का किरदार आर. माधवन ने निभाया है.

[12]*इकबाल*. 2005 में प्रदर्शित फ़िल्म में इकबाल का किरदार श्रेयस तलपडे ने निभाया है.

[13]www.ndtv.com/india-news/a-spate-of-suicides-highlights-the-pressures-on-students-in-india-1269694

[14]*तारे ज़मींन पर*. 2007 में प्रदर्शित एक फ़िल्म में एक शिक्षक का नाम है.

[15]Epaper.jansatta.com/c/11385051.30june,2016